UGC JOURNAL NO-40960 ISSN-0974-8946

अनुसन्धान-प्रकाशन-विभागीया

त्रैमासिकी शोध-पत्रिका

शोध-प्रभा

(A REFEREED QUARTERLY RESEARCH JOURNAL)

४३ वर्षे तृतीयोऽङ्कः (जुलाईमासाङ्कः) २०१८ ई०

प्रधानसम्पादकः

प्रो० रमेशकुमारपाण्डेयः

कुलपतिः

सम्पादकः

डॉ० शिवशङ्करमिश्रः

सहसम्पादकः

डॉ० ज्ञानधरपाठकः

प्रकाशन-स्थलम्

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्

(मानितविश्वविद्यालयः)

नवदेहली-११००१६

विषयानुक्रमणिका

संस्कृतविभाग:

1.	भगवत्पादीयस्तोत्रसाहित्येऽद्वैततत्त्वविमर्श:	प्रो.रामकिशोरत्रिपाठी
2.	मनुष्याणां चित्तस्य नियन्त्रणे बौद्धमनोविज्ञानस्य योगदानम्	प्रो.हरेरामत्रिपाठी
3.	सांख्यवेदान्तदर्शनयो: सृष्टिनिरूपणम्	डॉ.शिवकुमारमिश्र:
4.	स्मृति-वाङ्मये राजधर्म-चिन्तनम्	डॉ.दयालसिंहपँवार:
5.	शारीरिकशिक्षाया: मनोवैज्ञानिकपक्षा:	डॉ.परमेशकुमारशर्मा
6.	माधवीयधातुवृत्तावितरधातुवृत्तिविरोध:	श्रीमुकुलदेव:
7.	पिण्डानयनपूर्वकमायविवेचनम्	श्रीगणेशदत्तचतुर्वेदी
8.	नेत्ररोगपरिज्ञाने केचन विशिष्टयोगा:	श्रीसुरेन्द्रकुमार:

हिन्दी विभाग

9.	ब्राह्मणग्रन्थों में शिक्षा एवं पर्यावरण	डॉ.नारायण प्रसाद भट्टराई
10.	जैन दर्शन में द्रव्य–पर्याय का पारस्परिक सम्बन्ध	डॉ.अनुभा जैन
11.	प्राचीन एवं अर्वाचीन सन्दर्भ में निर्देशन की संकल्पना : वर्तमान चुनौतियाँ एवं समाधान	प्रो.रचना वर्मा मोहन एवं गुरिन्द्र कौर
12.	जैन दर्शन में कारण-कार्य सिद्धान्त	डॉ.रवि

English Section

13.	Right Significance of 'Tat Tvam Asi'	Dr. Pritam Singh

ISSN - 0974-8946
जुलाई-सितम्बर 2018

शोधप्रभा
वर्ष: 43, तृतीयाङ्क:

जैन दर्शन में द्रव्य–पर्याय का पारस्परिक सम्बन्ध

डॉ. अनुभा जैन*

जैन दर्शन में प्रत्येक द्रव्य पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है। उसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। यह दर्शन इस तथ्य को स्वीकार करता है कि प्रत्येक जीव अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करता है। जैसे कर्म करने में जीव की स्वतन्त्रता है वैसे ही उसका फल भोगने में भी वह पूर्णरूपेण स्वतन्त्र है।

जैनागमों में उस तत्त्व को द्रव्य कहा गया है जिसमें द्रव्यत्व हो अर्थात् जो परिणमनशील हो। इस आधिभौतिक जगत् का प्रत्येक द्रव्य परिणमनशील है। इसी परिणमन का ही नाम पर्याय है। स्पष्टत: द्रव्य और पर्याय पृथक्-पृथक् नहीं है[1] पर यह आवश्यक है कि जो द्रव्य जिस अपने द्रव्यस्वभाव में तथा जिस गुण में वर्तता है वह अन्य द्रव्य में तथा गुण में सक्रमित नहीं होता।[2] जैन दर्शन में यह नियमबद्ध है कि– जीव की पर्याय जीव की ही होती है, क्योंकि निश्चयनय से यह जीव द्रव्य सदैव अनादिकाल से अखण्ड सनातनरूप से ज्ञान के पर्यायों द्वारा परिणत हो रहा है और उन अपने पर्यायों का ही वह स्वयं कर्त्ता तथा भोक्ता होता है।[3] आदिपुराण में इसे ज्ञाता, द्रव्य, कर्त्ता एवं भोक्ता कहा है, प्रत्युत इसमें चैतन्य शक्ति है।[4] अजीव या पुद्गल का परिणमन या पर्याय पुद्गल की ही पर्याय होती है, क्योंकि जीव की पर्याय पुद्गल की पर्याय में परिवर्तित हो जाए तो जीव का अपना अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।[5] तत्त्वार्थसूत्र अर्थात् मोक्षशास्त्र स्वीकार करता है कि

---

* गुरु नानक महिला महाविद्यालय, यमुना नगर, हरियाणा

1. समयसार, 308: दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं।
जह कडयादीहिं दु पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह।।
2. समयसार, 102: जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता।
तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स दु वेदगो अप्पा।।
3. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, 10: परिणामानां नित्यं ज्ञानविवर्त्तैरना दिसंतत्या।
परिणममानां स्वेषां स भवति कर्त्ता च भोक्ता च।।
4. आदिपुराण, 24.92: चेतनालक्षणो जीव: सोऽनादिनिधनस्थिति:।।
ज्ञाता द्रष्टा च कर्त्ता च भोक्ता देहप्रमाणक:।।
5. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, पृ0 52, टीका।

जीव अनादि अविद्या के कारण शरीर को अपना मानता है और इसलिए वह शरीर में उत्पन्न होने पर अपनी उत्पत्ति तथा शरीर का नाश होने पर अपना नाश होना मानता है। जबकि वास्तविकता यह है कि जीव, जीव में अस्तिरूप से है और पर में नास्तिरूप से है। इसी प्रकार जीव परद्रव्यों के प्रति सम्पूर्णतया अकिंचित्कर है तथा परद्रव्य जीव के प्रति सम्पूर्णतया अकिंचित्कर हैं, क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप से नास्ति है। इससे जीव पराश्रयी-परावलंबित्व को मिटा कर स्वाश्रयी-स्वावलम्बी हो जाता है।

द्रव्य में से ही पर्यायों का उत्पाद और व्यय होता रहता है अर्थात् पर्याय द्रव्य में से ही उत्पन्न होकर उसी में विलीन हो जाती है, जबकि द्रव्य यथावत् बना रहता है।[1] इस प्रकार जैनाचार्यों के मत में प्रत्येक पदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है।[2] अतः द्रव्य के अस्तित्व का व्यय या विनाश नहीं होता। यही कारण है, कि जैनागमों में सत् अर्थात् अस्तित्व को द्रव्य का लक्षण कहा गया है।[3] जीव नित्य है परन्तु उसकी पर्याय बदलती रहती है। जिस प्रकार मिट्टी नित्य है परन्तु पर्यायों की अपेक्षा उसका उत्पाद और विनाश होता रहता है उसी प्रकार यह जीव नित्य है परन्तु पर्यायों की अपेक्षा उसमें भी उत्पाद और विनाश होता रहता है।[4]

यद्यपि पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती पर्यायों की एक श्रृंखला होती है जो एक दूसरे से सम्बन्धित होती है। जीव की पर्यायों की श्रृंखला अर्थात् जीव के मानसिक भावों का परिणमन पुद्गल या द्रव्य कर्म के परिवर्तन की श्रृंखला से पृथक् है। जीव एवं पुद्गल अपना-अपना कार्य स्वयं करते रहते हैं। ये दोनों द्रव्य अयुतसिद्ध संयोग सम्बन्ध से बद्ध हो रहे हैं तथा निमित्त-नैमित्तिक रूप से संतान परम्परा चलती रहती है जब तक कि मोह आदि विकारों का नाश नहीं हो जाता।[5] स्पष्टतः भावकर्म और पुद्गल कर्म का आपस में निमित-नैमित्तिक सम्बन्ध है परन्तु उनमें परस्पर कर्तृकर्मभाव बिल्कुल भी नहीं है।[6]

---

1. प्रवचनसार, 18: उप्पादो य विणासो विज्जदि सव्वस्स अत्थजादस्स।
   पज्जाएण दु केणवि अत्थो खलु होदि सब्भूदो।।
2. प्रवचनसार, 18: आचार्य अमृतचन्द्र सूरि की टीका
   आदिपुराण: 24.110: अभूत्वाभाव उत्पादो भूत्वा चाभवनं व्ययः।
   ध्रौव्यं तु तादवस्थ्यं स्यादेवमात्मा: त्रिलक्षणः।।
3. तत्त्वार्थसूत्र, 5.29: सद् द्रव्यलक्षणम्।
4. आदिपुराण, 24.109: शाश्वतोऽयं भवेज्जीवः पर्यायस्तु पृथक्-पृथक्।
   मृद्द्रव्यस्येव पर्यायैस्तस्योत्पत्ति विपत्तयः।।
5. पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, 12: जीवकृतं परिणामं निमित्तमात्रं प्रपद्य पुनरन्ये।
   स्वयमेव परिणमन्तेऽत्र पुद्गलाः कर्मभावेन।।
6. समयसार, 81: णावि कुव्वइ कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
   अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हं पि।।

जैनाचार्यों के अनुसार जीव जब शुभ-अशुभ का भाव करता है तो उसका निमित्त पाकर पुद्गल कर्म जीव के साथ बंध जाता है[1] और जब पुद्गल कर्म का उदयकाल आता है तो इस जीव का रागादि विकारी भाव रूप परिणमित हो जाता है।[2] स्पष्टतः कर्मों के उदय का निमित्त पाकर यह जीव अपने में विकार भाव उत्पन्न करके अपनी स्वतन्त्रता से स्वयं परतन्त्र यानि कर्माधीन होता है।[3] मोक्ष जीव को होता है। अतः जीव के द्वारा ग्रहण किये गए संसार से ही जीव को मोक्ष होता है तथा अजीव के होने पर संसार होता है। जीव और अजीव के परस्पर में बद्ध होने का नाम ही संसार है। संसार के प्रधानकारण आस्रव और बन्ध हैं। अतः आस्रव-बन्ध के तथा मोक्ष के प्रधान कारण संवर-निर्जरा हैं। इस प्रकार ये सात द्रव्य कहे गये हैं।[4] द्रव्य और पर्याय के इस वर्णन और जीव-पुद्गल अथवा भाव कर्म-द्रव्य कर्म के आपस में निमित्त-नैमित्तिक कारण कार्य रूप सम्बन्ध है। यही निमित-नैमित्तिक भाव होने के कारण जीव व्यवहार नय से पुद्गल कर्म को करता है तथा पुद्गल कर्म को भोगता है।[5]

तत्त्वार्थसूत्र में एक अनादि अनन्त शुद्ध चैतन्यस्वभाव होने पर भी उसकी अवस्था में विकार है क्योंकि जड़ कर्म के साथ जीव का अनादि काल से सम्बन्ध रहा है परन्तु फिर भी उसके ज्ञान, दर्शन तथा वीर्य का आंशिक विकास सदा बना रहता है। जैसे-जैसे जीव सत्पुरूशार्थ को बढ़ाता है वैसे वैसे मोह अंशतः दूर होता जाता है। स्पष्टतः जीव स्वयं निमित्ताधीन होकर विकार करता है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने भी जीव की उपयोगात्मक वीर्यमय चेतन शक्ति की स्वतन्त्रता को स्पष्ट किया है अर्थात् जीव के पुरुषार्थ करने की स्वतन्त्रता विद्यमान रहती है, क्योंकि जीव के मानसिक भावों के परिणमन रूप भाव कर्म और मस्तिष्क के स्नायुतन्त्र के परिवर्तन रूप पुद्गल द्रव्य कर्म के बीच प्रत्यक्ष कारण कार्य सम्बन्ध के स्थान पर उसे निमित नैमित्तिक रूप परोक्ष कार्य की तरह का सम्बन्ध है, जिससे दोनों प्रकार के परिणमनों की पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती पर्यायों की पृथक्-पृथक् श्रृंखला में एक प्रकार का क्रमिक सम्बन्ध बना रहता है। जैसा मस्तिष्क के स्नायुतन्त्रों का परिणमन होता है उसी प्रकार मनुष्य के मानसिक भाव होते हैं और जैसे मनुष्य के भावों का परिणमन होता है उसी के अनुसार मस्तिष्क के स्नायुतन्त्रों में परिवर्तन और शरीर की ग्रन्थियों का स्राव होता है।

---

1. समयार, 69: जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोण्हं पि।
   अण्णाणी तावदु सो कोधादिसु वट्टदे जीवो।।
2. पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, 13: परिणममानस्य चितश्चिदात्मकैः स्वयमपि स्वकैर्भावैः।।
   भवति हि निमित्तमात्रं पौद्गलिकं कर्म तस्यापि।।
3. द्र0:पुरुषार्थ- सिद्धयुपाय, पृ0 59-60
4. तत्त्वार्थ सूत्र, 1.4 जीवाजीवास्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम्
5. समयसार, 84: ववहारस्स दु आदा पुग्गलकम्मं करेदि णेयविहं।
   तं चेव पूणो वेयइ पुग्गलकम्मं अणेयविहं।।

जैनागमों में जीव के स्वरूप को बताते हुए कहा है कि जीव अनेक गुणों से युक्त है, कर्मों का सर्वथा नाश हो जाने पर उर्ध्वगमन करना ही इसका स्वभाव है। यह दीपक के प्रकाश की तरह संकुचित एवं विस्तार रूप परिणमन करने वाला है।[1]

पुद्गल द्रव्य कर्म के उदय के वशीभूत जीव में क्रोधादि का आवेश उत्पन्न होने पर भी वह जीव क्रोधादि विकार उत्पन्न करके नए कर्म का बंध करे या विकारों को नियन्त्रित करके पहले के बाँधे हुए कर्मों का क्षय करे- इस के लिए जीव पूर्णतया स्वतन्त्र है। द्रव्य और उसकी पर्याय पृथक्-पृथक् नहीं है। दोनों अनन्य हैं। जीव (आत्मा) न किसी से उत्पन्न हुआ है और न ही किसी के द्वारा उत्पन्न किया गया कार्य है। जीव किसी अन्य को भी उत्पन्न नहीं करता और किसी अन्य का कारण भी नहीं है। 18 वह तो कर्म को आश्रय करके कर्त्ता होता है[2] यही जैन-सिद्धान्त है। पूर्व-पूर्व पर्यायों के नष्ट होने पर जो उत्तरोत्तर पर्यायें क्रम से होती जाती हैं, उसे क्रमवर्ती कहते हैं, यद्यपि सब पर्याय अपने-अपने द्रव्यों के आश्रय से होती हैं।[3]

जैनाचार्यों के मत में अन्य किसी की सहायता के बिना अपने उपयोग की स्वतन्त्रता के बल पर अपने आप ही स्वयम्भू पद को प्राप्त होता है।[4] मोक्षशास्त्र में जीव को स्वज्ञेय तथा स्वयं ज्ञानस्वरूप कहा गया है। यह जीवात्मा स्वयं ही, अपने शुद्ध स्वरूप को, अपने से ही, अपने लिए, अपनी शुद्ध अवस्था को छोड़ कर, अपनी ही शक्ति के आधार पर प्राप्त करने के कारण स्वयम्भू कहा जाता है।[5] नियमत: यह जीव निश्चय करके आप ही षट्कारक है[6] और दूसरे द्रव्य अर्थात् पुद्गल के साथ उसका कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण रूप कारक का प्रत्यक्ष

---

1. आदिपुराण, 24.93: गुणवान् कर्मनिर्भुपक्तावूर्ध्वघ्र ज्यास्वभाव:।
   परिणन्तोपसंहार विसर्पाभ्यां प्रदीपवत्।।
2. समयसार, 310: ण कुदोचि वि उप्पण्णो जह्मा कज्जं ण तेण सो आदा।
   उप्पादेदि ण किंचिवि कारणमवि तेण ण स होइ।।
3. समयसार, 311: कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि।
   उप्पंजंति य णियमा सिद्धि दु ण दीसए अण्णा।।
4. द्र0- पंचाध्यायी, पं0 राजमल्ल, 1.168.169
5. प्रवचनसार, 16: तह सो लद्धसहावो सव्वण्हु सव्वलोगपदिमहिदो।
   भूदो समयेवादा हवदि सयंभुत्ति णिद्दिट्ठो।।
6. प्रवचनसार, गाथा 16 पर आचार्य अमृतचन्द्र सूरि की टीका:
   अयं खल्वात्मा शुद्धोपयोग भावनानुभाव प्रत्यस्तमित समस्त
   घातिकर्मतया समुपलब्धशुद्धानन्त शक्तिचित्वभाव:
   शुद्धानन्तषक्तिज्ञायकस्वभावेन स्वतन्त्रत्वाद्गृहीतकर्तृत्ववाधिकार।
7. प्रवचनसार, स्वयमेव षट्कारकीरूपेणोपजायमान:।

सम्बन्ध नहीं है। जीव कर्म को मात्र जान रहा है, वह कर्म नहीं करता। एक द्रव्य का दूसरे के साथ कोई सम्बन्ध है तो मात्र व्यवहार से निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है।

स्पष्टत: जीव और अजीव की पर्यायें अलग-अलग होती है तथा क्रम से घटित हो पूर्ववर्ती पर्याय उत्तरवर्त्ती पर्यायों की अपेक्षा उत्पाद-व्यय रूप होती है परन्तु पर्यायों के घटि का क्रम पूर्व नियत नहीं होता । जीव और पुद्गल की पर्यायों का अलग-अलग होना औ का परद्रव्य अर्थात् पुद्गल के परिणमन को ग्रहण नहीं करना जीव की स्वतन्त्रता का उद्घो अर्थात् जीव (आत्मा) ही आत्मा की शरण है और आत्मा ही अपनी आत्मा का उद्धार कर है क्योंकि आत्मा अपने ही भाव का कर्त्ता होता है व अपने ही भाव का भोक्ता होता है

किसी भी द्रव्य का अन्य द्रव्य में संक्रमण होने की असमर्थता है। उसी प्रका पुद्गलकर्मों का अकर्त्ता है क्यों कि आत्मा अपना गुण व क्रिया कुछ भी पुद्गल में नह सकता।[2]

अत: स्वत: सिद्ध है कि जिस द्रव्य का जो स्वरूप है वह अपनी सीमा का उल्लंघ जब अन्य द्रव्य में संक्रमित नहीं होता है तब वह अन्य द्रव्य का परिणमन कराने वाला सकता।[3]

जैनाचार्य मानते हैं कि अनादि काल से जीव के साथ कर्म का सम्बन्ध रहा है। अपनी शक्ति का सदुपयोग या दुरूपयोग करने में पूर्णतया स्वतन्त्र है। शक्ति का दुरूपयोग नियोग तक पहुँचा देता है जबकि उसी शक्ति का सदुपयोग केवलज्ञान रूप हो जाता है।

पर्यायों की दृष्टि से प्रत्येक द्रव्य अनादि-अनन्त है, क्योंकि असत् का उत्पाद न और सत् का व्यय अर्थात् नाश नहीं होता[4] इसीलिए जैनागमों के अनुसार पर्याय का होना न होना बाह्य आभ्यंतर कारणों पर निर्भर है। इन कारणों में काल भी एक मुख्य कारण है,[5] वर्तना, परिणाम, क्रिया आदि ये काल द्रव्य के उपकारक हैं अर्थात् पदार्थ का परिणमन स

---

1. समयसार, 101: जे पुग्गलदव्वाणं परिणामा होंति णाणआवरणा।
   ण करेदि ताणि आदा जो जाणदि सो हवदि णाणी।
2. समससार, 104: आचार्य अमृतचन्द्र सूरि की टीका द्रव्यांतरसंक्रममंतरेणान्यस्य परिणामयितुम्। तत: स्थित: खल्वात्मा पुद्गलकर्मणामकर्त्ता।।
3. समयसार, 103: जो जह्मि गुणे दव्वे सो अण्णह्मि दु ण संकमदि दव्वे।
   सो अण्णमसंकतो कह तं परिणामए दव्वं।
4. द्र0- पंचास्तिकाय, 15
5. द्र0 मोक्षमार्ग प्रकाशक, अध्यया-9
6. तत्त्वार्थसूत्र, 5.22: वर्तनापरिणाम-क्रिया: परत्वापरत्वे च कालस्य।

के अधीन नहीं है किन्तु प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने अन्तंरग व बहिरंग निमित्तों के अधीन परिणमता है जिस प्रकार एक ही बीज होने पर भी अनेक प्रकार की भूमियों के कारण उसके फल में विभिन्नता आ जाती है।[1] उत्तम भूमि मे उस बीज से उत्तम फल उत्पन्न होगा और बंजर भूमि में वही बीज खराब हो जाएगा, क्योंकि निमित्त कारण की विशेषता से पर्यायरूप कार्य में विशेषता होना अवश्यंभावी है।[2] अत: जैनाचार्य यह स्पष्ट मानते हैं कि कारण के भेद से कार्य का भेद निश्चित होता है।

अन्तत: कहा जा सकता है कि जैसा कारण मिलेगा वैसी पर्याय उत्पन्न हो जाएगी, ऐसा जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है जिसको आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी ने प्रवचनसार में लिपिबद्ध किया है। यदि आगामी शक्तिरूप पर्याय के अनुकूल बाह्यसामग्री न मिले तो वह शक्तिरूप पर्याय उत्पन्न नहीं होगी। अत: स्व और पर कारणों से होने वाली उत्पाद और व्यय रूप में पर्यायें हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप बाह्यप्रत्यय हैं अर्थात् परकारण हैं तथा उस रूप परिणमन करने की अपनी शक्ति स्वकारण है। स्व और पर दोनों कारणों के मिलने पर ही पर्याय उत्पन्न होती है।

निष्कर्षत: जीव का पुदगल के साथ प्रवाहरूप से अनादि काल से सम्बन्ध चला आ रहा है। जीव इस संयोग सम्बन्ध को तादात्म्यसम्बन्ध रूप से मानता है। इसलिए जीव अज्ञानता से शरीर को अपना मानता है आरै शरीर के साथ मात्र निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होने पर भी इसके साथ कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध मानता है परन्तु पुद्गल की पर्याय का जीव कर्त्ता हर्त्ता नहीं है। जीव का काम तो पुरूषार्थ पूर्वक उद्यम करना है: क्योंकि इसी पुरूषार्थ से मोक्ष के उपाय की सिद्धि स्वयमेव होती है। जब जीव पुरूषार्थ के द्वारा तत्त्वनिर्णय करने में उपयोग लगाने का अभ्यास करता है उसकी विशुद्धता बढ़ती है, कर्मो का रस स्वयं हीन हो जाता है। अत: जीव का कर्त्तव्य तो स्वतन्त्र रूप से तत्त्वनिर्णय का अभ्यास करना है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

➢ श्रीमद्रविषेणाचार्य, पद्मपुराण (पद्मचरित) प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय भाग, सम्पादन-अनुवादक डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, पन्द्रहवां संस्करण, मूर्तिदेवी

---

1. प्रवचनसार, 355: रागो पसत्थभूदो वत्थुविसेसेण फलदि विवरीदं।
णाणाभूमिगदाणि हि वीयाणि वसस्सकालम्मि।।

2. प्रवचनसार, 255 पर आचार्य अमृतचन्द्रसूरि की टीका:
यथैकेषामपि बीजानां भूमिवैपरीत्यान्निष्पत्तिवैपरीत्यं
तथैकस्यापि पशस्तरागलक्षणस्य शुभोपयोगस्य
पात्रवैपरीत्यात्फलवैपरीत्यं कारणविशेषात्कार्यविशेषस्यावश्यं
भावित्वात्।

No	Special Conditions
	Arrangement of Compassionate Visit
	Embassy Referral

जैन ग्रन्थमाला, ISBN-81-263-0804-4 (set)

- स्वामिसमन्तभद्राचार्य, श्रीरत्नकरण्डश्रावकाचार, टीकाकार-पं0 सदासुखदास जी कासलीवाल (जयपुर निवासी), प्रकाशक-अखिल भारतवर्षीय केन्द्रीय श्री दि0 जैन महासमिति धर्मपुरा, दिल्ली, जनवरी 1951
- जैनधर्म का प्रचीन इतिहास (प्रथम भाग), बलभद्र जैन प्रेरक--प्रमुख आचार्य श्री देशभूषणज महाराज विद्यालंकार, प्रकाशक-प0 केशरीचन्द्र श्रीचन्द्र, नया बाजार, दिल्ली-6, तीर्थंक चरितावली, प्रथमावृत्ति
- परमपूज्य आचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज संयम प्रकाश-पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध प्रकाशक-श्र दिगम्बर जैन पंचायत (पंजी0), 1995, देवाराम पार्क, त्रीनगर, दिल्ली-110035
- कातंत्र-व्याकरण, हिन्दी टीका-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती, वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला, पुष्प न 83
- आचार्य उमास्वामी, तत्त्वार्थसूत्र- मोक्षशास्त्र, हिन्दी टीका-बाल ब्रह्मचारी प्रद्युम्न कुमा ईसरी, सम्पादक-प्रो0 निहाल चन्द जैन (बिना, म0 प्र0), प्रकाशक-गजेन्द्र ग्रन्थमाल दिल्ली 110006
- जिनेन्द्र वर्णी, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग-1,2,3,4, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ल 12 वाँ संस्करण, मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रन्थांक 38, ISBN-81-263-092 7 (set)
- पं0 बालचन्द्र शास्त्री, षटखण्डागम अनुशीलन, मूर्ति देवी ग्रन्थमाला, हिन्दी ग्रन्थांक 2 भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1987
- आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज, जैन धर्म का मौलिक इतिहास (प्रथम भाग), तीर्थङ्क खण्ड, प्रथम संस्करण, 1971, प्रकाशक-जैन इतिहास समिति, जयपुर
- दिगम्बर जैनाचार्यश्री शुभचन्द्राचार्यविरचित, ज्ञानार्णवः, सुजानगढ़ निवासिपन्नालाल बाकलीवालकृत हिन्दी भाषानुवाद सहित, प्रकाशक-शा0 रेवाशंकर जगजीवन ज 1927, बम्बई-2, रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला
- पण्डित प्रवर आशाधर, धर्मामृत (सागर), ISBN-978-81-263-2030-1 (set)
- आचार्य जिनसेन, आदिपुराण (प्रथम एवं द्वितीय भाग), हिन्दी अनुवाद प्रस्तावना त परिशिष्ट आदि सहित, अनुवाद-डॉ0 पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य 16 वाँ संस्करण, दिल्ली-110003, मूर्ति देवी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्कृत ग्रन्थांक-8, ISB 81-263-0853-2 (set)
- आचार्य पूज्यपाद, सर्वार्थसिद्धि, अनुवादक-सिद्धान्ताचार्य पं0 फूलचन्द शास्त्री, अनुवाद

Religare Health Insurance Company Limited
Registered Office: D-3, District Centre, Saket, New Delhi - 110017 Correspondence Office: GYS Global, Plot No. A3, A4, A5, Sector - 125, Noida, U.P. - 201301
Website: www.religarehealthinsurance.com E-mail: customerfirst@religarehealthinsurance.com Call us: 1800-200-4488 / 1860-500-4488
CIN:U66000DL2007PLC161503 UIN: IRDA/NL-HLT/RHI/P-T/V.I/71/2014-15 **IRDA Registration No. - 148**

सिद्धान्तचार्य पं0 फूलचन्द्र शास्त्री

- आचार्य गृद्धपिच्छ, तत्त्वार्थसूत्र वृत्ति सहित, भारतीय ज्ञानपीठ 18 वां0 संस्करण, ISBN-978-93-263-5110-2
- श्रीमदवट्टकेराचार्य, मूलाचार (उत्तरार्द्ध), श्री वसुनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्ती द्वारा लिखित आचारवृत्ति, संस्कृत टीका सहित हिन्दी टीकानुवाद आर्यिकारत्न ज्ञानमती जी, भारतीय ज्ञानपीठ, ISBN-81-263-263-0751-X (Set)
- आचार्य अमृतचन्द्र, पुरुषार्थसिद्धयुपाय, भाव प्रकाशनी नामक बृहद् हिन्दी टीका सहित, हिन्दीटीकाकार-पं0 मुन्नालाल रॉघलीय वर्णी (शास्त्री न्यायतीर्थ), प्रकाशक-क्रिशन लाल बृद्धि देवी, जैन विनायका, हजारीबाग, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2001
- श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव, प्रवचनसार, श्रीमद्मृतचन्द्रसूरि द्वारा विरचित तत्त्वदीपिका पर सप्तदंशागीटीका, टीकाकार गुरूवर्य श्री मनोहर जी वर्णी , प्रकाशक खेमचन्द्र जैन सर्राफा, मंत्री श्री सहजानन्दशास्त्रमाला, मेरठ, 1979
- आचार्यमजिनसेन, हरिवंशपुराण, अनुवादक डॉ0 पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, हिन्दी अनुवाद प्रस्तावना तथा परिशिष्ट सहित, 5 वां संस्करण, 1999, ज्ञानपीठ मूर्ति जैन ग्रन्थमाला, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्कृत ग्रन्थांक-27, ISBN-81-263-0144-9
- श्रीमद्भगवज्जिनसेनाचार्य प्रणीतम् महापुराणम्, प्रथमो विभागः आदिपुराणम्, पं0 पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, बनारस-1, प्रथम आवृत्ति, ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रन्थांक-9